—हजारीमल बांठिया.
कानपुर

जैनाचार्य श्री हरिभद्रसूरि और श्री हेमचन्द्रसूरि

जैन साहित्यकाश में कलियुग-केवली आचार्य श्री हरिभद्रसूरि एवं कालिकाल-सर्वज्ञ आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि दोनों ही ऐसे महान् दिग्गज विद्वान आचार्य हुए हैं—किसको 'सूर' कहा जाए या किस को 'शशि'—यह निर्णय करना दुष्कर कार्य है। वीर-प्रसूता भूमि चित्तौड़गढ़ में उच्च ब्राह्मण कुल में जन्मे श्री हरिभद्र चतुर्दश ब्राह्मण विद्याओं में पारंगत उद्भट विद्वान थे। इनके पिता का नाम शंकर भट्ट और माता का नाम गंगण या गंगा था। हरिभद्र पण्डितों में अपने आपको अजेय मानते थे। इसलिए चित्रकूट नरेश जितारि ने उनको अपना राजगुरु मानकर राजपुरोहित जैसे सम्मानित पद पर नियुक्त कर दिया था। कलिकाल-सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य भी चौलुक्य नरेश जयसिंह सिद्धराज एवं सम्राट कुमारपाल के राजगुरु थे। श्री हरिभद्रसूरि प्राकृत भाषा के पण्डित थे तो हेमचन्द्राचार्य संस्कृत भाषा के। पुरातत्त्वाचार्य मुनि जिनविजय जी ने श्री हरिभद्रसूरि का समय वि. स. ७५७ से ८२७ तक निर्णीत किया है और सभी आधुनिक शोध विद्वानों ने भी इस समय को ही निर्विवाद रूप से मान्य किया है। इस तरह श्री हरिभद्रसूरि विक्रम की आठवीं शताब्दी के ज्योतिर्धर आचार्य थे तो हेमचन्द्राचार्य विक्रम की बारहवीं शताब्दी के। इनका जन्म वणिक-कुल में धंधूका (गुजरात) में हुआ। इनका समय वि. सं. ११४५ से १२२९ तक माना गया है। इनकी माता का नाम पाहिनी एवं पिता का नाम चाच था। हरिभद्र राजस्थान के सूर्य थे तो हेमचन्द्र गुजरात के। इन्हीं दोनों आचार्यों के प्रभाव के कारण ही आज तक गुजरात और राजस्थान जैन धर्म के केन्द्र बने हुए हैं। हरिभद्र के गुरु का नाम जिनदत्तसूरि था और हेमचन्द्र के गुरु का नाम देवचन्द्रसूरि था।

दोनों ही आचार्य उदारमना थे। उनके दिल में हठाग्र रंचित मात्र नहीं था। हजारों वर्षों के बीत जाने पर भी हरिभद्रसूरि का जीवन प्रकाशमान सूर्य की तरह आभा-किरणें बिखेर रहा है। उनमें जैसे उदारमानस का विकास हुआ वैसा बिरले पुरुषों में दृष्टिगोचर होता है। उनका उदात्त-घोष आज भी सुविश्रुत है।

'पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्ति मद् वचनं यस्य तस्य कार्य परिग्रहः।३८।

अर्थात्—वीर वचन में मेरा पक्षपात नहीं। कपिल मुनियों से मेरा द्वेष नहीं, जिनका वचन तर्कयुक्त है—वही ग्राह्य है।

इसी प्रकार जब हेमचन्द्राचार्य ने सोमनाथ मन्दिर में सम्राट कुमारपाल के साथ शिव मन्दिर में प्रवेश किया तो संस्कृत के श्लोकों द्वारा शिव की स्तुति की।

साध्वीरत्न कुसुमवती अभिनन्दन ग्रन्थ
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'भवबीजांकुरजनना रागाद्याः क्षयमुपागता यस्य।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा, हरो जिनो वा नमस्तस्मै।'

अर्थात्—भव बीज को अंकुरित करने वाले राग-द्वेष पर जिन्होंने विजय प्राप्त करली है, भले वे ब्रह्मा, विष्णु, हरि और जिन किसी भी नाम से सम्बोधित होते हों उन्हें मेरा नमस्कार है।

'महारागो महाद्वेषो, महामोहस्तथैव च।
कषायश्च हतो येन, महादेवः स उच्यते॥

अर्थात्—जिसने महाराग, महाद्वेष, महामोह और कषाय को नष्ट किया है वही महादेव है।

इस प्रकार हेमचन्द्राचार्य द्वारा शिव की उदार-मना स्तुति करने पर सम्राट कुमारपाल तो प्रभावित हुआ ही किन्तु उनसे द्वेष भाव रखने वाले शैव-पण्डित भी दाँतों तले अंगुली दबा गये।

आचार्य हरिभद्र वैदिक दर्शन के परगामी विद्वान तो थे ही फिर भी उन्होंने प्रतिज्ञा कर रखी थी यदि किसी दूसरे धर्मदर्शन को मैं समझ न सका तो मैं उसी का शिष्य बन जाऊँगा। एक बार रात्रि को राजसभा से लौटते समय राजपुरोहित हरिभद्र जैन उपाश्रय के निकट से गुजरे। उपाश्रय में साध्वी संघ की प्रमुखा 'महत्तरा याकिनी' निम्न श्लोक के स्वर लहरी में जाप कर रही थी—

'चक्कि दुगं हरिपणगं,
पणगं चक्कीण केसवो चक्की।
केसव चक्की केसव,
दुचक्की केसीय चक्किथा।

राजपुरोहित हरिभद्र ने यह श्लोक सुना तो उनको कुछ भी समय में नहीं आया तो अर्थ-बोध पाने की लालसा से उपाश्रय में प्रवेश कर याकिनी महत्तरा से इसका अर्थ पूछा तो उन्होंने कहा—इसका अर्थ तो मेरे गुरु श्री जिनदत्त सूरि ही बता सकते हैं।

जब गुरु के पास प्रातःकाल हरिभद्र गये तो श्री जिनदत्तसूरि ने कहा—जैन मुनि बनने पर ही इसका अर्थ समझ में आयेगा—तब तत्काल राजपुरोहित हरिभद्र ने जैन-मुनि बनना स्वीकार कर राजपुरोहित से धर्म पुरोहित बन गये। जब इसका अर्थ गुरु से समझ लिया तो जैन शास्त्र ज्ञान की तरफ उनका झुकाव हो गया और अल्प समय में ही आगम, योग, ज्योतिष, न्याय, व्याकरण, प्रमाण शास्त्र आदि विषयों के महान ज्ञाता और आगमवेत्ता बन गये और कई ग्रन्थों की टीकायें लिखीं।

हंस और परम हंस हरिभद्रसूरि के भानजे थे वे भी जैन साधु बन गये। आचार्य श्री के मना करने पर भी वे बौद्ध दर्शन अध्ययन करने बौद्ध-मठ में गये।

जैन-छात्र हैं, यह सन्देह होने पर बौद्ध प्राध्यापकों ने हंस को वहीं मार दिया और परम-हंस किसी तरह भाग निकले किन्तु वह भी चित्तौड़ आकर मारे गये।

अपने दोनों प्रिय शिष्यों के मर जाने से हरिभद्रसूरि को बहुत दुःख हुआ और बौद्धों से बदला लेने के लिए उन्होंने १४४४ बौद्ध-साधुओं को विद्या के बल से मारने का संकल्प लिया—किन्तु गुरु का प्रतिबोध पाकर हिंसा का मार्ग छोड़-कर १४४४ ग्रन्थों की रचना का संकल्प लिया और माँ भारती का भण्डार भरने लगे। दुर्भाग्य से इस वक्त ९० करीब ग्रन्थ ही उपलब्ध हैं। जिसमें से आधे तक अब ही प्रकाशित हुए हैं।

आचार्य हरिभद्रसूरि ने उच्चकोटि का, विपुल परिमाण में विविध विषयों पर साहित्य की रचना की है। उनके ग्रन्थ जैन शासन की अनुपम सम्पदा है। आगमिक क्षेत्र में सर्वप्रथम टीकाकार थे। योग विषयों पर भी उन्होंने नई दिशा व जानकारी दी। आचार्य हरिभद्रसूरि ने आवश्यक, दशवैकालिक, जीवाभिगम, प्रज्ञापना, नन्दी, अनुयोगद्वार—इन आगमों पर टीका रचना का कार्य किया।

'समराइच्चकहा' आचार्य हरिभद्रसूरि को अत्यन्त प्रसिद्ध प्राकृत रचना है। शब्दों का लालित्य, शैली का सौष्ठव, सिद्धान्त सुधापान कराने वाली कांत-कोमल पदावली एवं भावभिव्यक्ति का अजस्र

साध्वीरत्न कुसुमवती अभिनन्दन ग्रन्थ
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बहता ज्ञान निर्झर कथा वस्तु की रोचकता एवं सौन्दर्य प्रसाद तथा माधुर्य इसका समवेत रूप—इन सभी गुणों का एक साथ दर्शन इस कृति से होता है। इस ग्रन्थ का सम्पादन जर्मन के डा० हरमन जैकोबी ने सन् १९२६ में किया था जो रायल एशियाटिक सोसायटी कलकत्ते से छपा है। लिखने का सारांश यह है कि लाखों श्लोक परिमाण-साहित्य की रचना आचार्य हरिभद्रसूरि ने की है।

आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने भी इतना ही विपुल साहित्य संस्कृत में रचा है, उसका भी परिमाण लाखों श्लोकों का है। आचार्य हेमचन्द्र का भी पूरा साहित्य उपलब्ध नहीं हैं। इनकी भी प्रतिभा हेम-सी निर्मल थी।

वे ज्ञान के विपुल भण्डार थे। पाश्चात्य विद्वानों ने तो आचार्य हेमचन्द्र को 'ज्ञान-समुद्र' कह कर सम्बोधित किया है। हेम शब्दानुशासन व्याकरण और त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित आचार्य श्री की अद्भुत रचनायें हैं। जर्मनी के डा० जार्ज वूल्हर ने हेमचन्द्राचार्य के ग्रन्थों से प्रभावित होकर जर्मनी भाषा में आचार्य हेमचन्द्रसूरि का सर्व-प्रथम जीवन चरित्र लिखा जिसका अनुवाद हिन्दी में स्व० श्री कस्तूरमल जी बाँठिया ने किया है। हेमचन्द्र की पारगामी प्रज्ञा पर दिग्गज विद्वानों के मस्तिष्क झुक गये। उन्होंने कहा—

किं स्तुमः शब्द पयोधे हेमचन्द्र ते मतिम्।
एकेनासीह येनेदृक् कृतं शब्दानुशासनम्।

अर्थात्—शब्द समुद्र हेमचन्द्राचार्य की प्रतिभा की क्या स्तुति करें जिन्होंने इतने विशाल शब्दानु-शासन की रचना की है।

इस प्रकार हम देखते हैं दोनों आचार्यों के रचित ग्रन्थ जैन ही नहीं अपितु विश्व साहित्यकाश के बेजोड़ नक्षत्र हैं। सुधी पाठक स्वयं ही निर्णय करे कलिकाल केवली आचार्य श्री हरिभद्रसूरि या कलि-काल सर्वज्ञ आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि कौन 'सूर' है या कौन 'शशि' है।

पुरातत्वाचार्य स्व० मुनि जिनविजयजी आचार्य श्री हरिभद्रसूरि से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने हरिभद्रसूरि की मूर्त्ति स्वयं अपने अर्थ से निर्मित कराई और हरिभद्रसूरि के चरणों में अपनी मूर्ति भी खुदवा दी और चित्तौड़गढ़ के प्रवेश मार्ग पर ही श्री हरिभद्रसूरि ज्ञान मन्दिर बनवा दिया जिसका संचालन आजकल श्री जिनदत्तसूरि सेवा संघ कलकत्ता कर रहा है।

मुनिजी को इस बात का गहरा दुःख था कि वर्तमान में जैन समाज ने हरिभद्र-सूरि को भुला दिया है, उनको यथोचित्त सम्मान नहीं मिला।

जैनियों को हरिभद्रसूरि के नाम से विश्व विद्यालय खोलना चाहिए था—गुजरात में हेमचन्द्राचार्य को तो बहुत आदर से याद किया जाता है, जगह-जगह उनकी प्रतिमायें व चरण हैं भारत सरकार का कर्तव्य है ऐसे दो महान ज्ञान-पुंज भारतीय जैन आचार्यों का यथोचित सम्मान कर उनकी स्मृति में ज्ञान मन्दिर—विद्या मन्दिर बनवाये। □

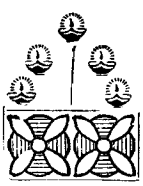

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org